ईसाई धर्म में मानव अधिकार की अवधारणा

डॉ. एम. डी. थॉमस

मानव अधिकार का संदर्भ सृष्टि की विविधता है। जैसा की ज़ाहिर है, विविधता सृष्टि की बुनियादी विशेषता है। सृष्टि के भिन्न-भिन्न तत्व अनेक होने के साथ-साथ एक-दूसरे से गुणात्मक फर्क लिए हुए हैं। खास तौर पर मनुष्य की सँस्कृति में, हर व्यक्ति की ही नहीं, हर समुदाय की भी अपनी-अपनी अहमियत है। इन्सान की ज़िन्दगी सुचारू रूप से चल सके, इसके लिए ज़रूरी है कि व्यक्ति और व्यक्ति तथा समुदाय और समुदाय के बीच आपसी तालमेल रहे। ज़िन्दगी के विभिन्न पहलुओं में मेल-जोल का सन्तुलन रखना जीवन की कामयाबी को पहचान है। यही है अलौकिक जीवन का असली आधार भी। तालमेल के विविध पहलुओं में अधिकार और कर्तव्य का सन्तुलन मूल तौर पर अहम् है। जब यह सन्तुलन बिगड़ जाता है, मानव अधिकार एक सवाल बनकर खड़ा होता है।

मानव अधिकार ऐसी अवधारणा है जो मानव की ज़िन्दगी की बुनियाद में मौजूद तत्वों का विश्लेषण करती है। अधिकार इन्सान को ज़िन्दगी में अपनी संभावनाओं को विकसित करने के लिए सब कुछ कर सकने में समर्थ बनाता है। यह वस्तु, सम्पत्ति आदि ज़िन्दगी को जीने के लिए ज़रूरी तमाम चीज़ों पर होने वाला स्वामित्व है। उपर्युक्त चीज़ों को हासिल करने की प्रक्रिया भी अधिकार के भीतर आती है। किसी विशिष्ठ कार्य करने की शक्ति या योग्यता भी अधिकार है। जो धर्म न्याय, आदि की दृष्टि से उचित या ठीक हो, यही असल में हक है। इसकी प्राप्ति भी न्याय, प्रथा, आदि के मुताबिक होती है। हर किसी को अपना-अपना हिस्सा मिले, यही न्याय है। न्याय में ऐसे आचरण या व्यवहार का इन्तजाम है, जिसमें नैतिक दृष्टि से किसी प्रकार का अनौचित्य, पक्षपात या बेईमानी नहीं है। न्यायपूर्ण व्यवहार में समता का भाव है। संसार के सभी मनुष्यों का समान रुप से कल्याण हो, सब को उन्नत, सन्तुष्ट और सुखी होने की व्यवस्था मिले, यही अधिकार का मकसद है। मनुष्य के आदर्शों, स्वाभाविक गुणों, भावनाओं आदि का प्रतीक है मानवता। मानवता की प्रतिष्ठा का भाव मानव अधिकार की अवधारणा का मर्म है। जब इस पुनीत भाव का भंग होता है तब मानव अधिकार की मांग एक प्रतिबद्धता का रूप ले लेती है और ऐसे आयोग या मिशन के रूप में बुलन्द होता है, जो मंज़िल पहुँचने तक अपने सफर में डटकर कायम रहता है।

मानव अधिकार की धारणा कर्तव्य की चर्चा से बिछुड़कर अधूरी रहती है। कर्तव्य के संदर्भ में ही अधिकार प्रांसगिक और कारगर है। अधिकार और कर्तव्य के तालमेल से मानव जीवन का सम्पूर्ण रूप उभरकर सामने आता है। एक अपने कर्तव्य का पालन करे, तभी दूसरे को अपना अधिकार हासिल होगा। हर कोई दूसरे का सम्मान करे, उसके आत्म-सम्मान को ठेस नहीं पहुँचाये और उसके व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप नहीं करे, ऐसा व्यवहार मूल कर्तव्य के मुताबिक ज़रूरी है। कोई किसी का शोषण नहीं करे और कोई किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाये, यह भी कर्तव्य-पालन के तरीवे हैं। कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अपने से छोटा नहीं माने, कोई समुदाय दूसरे समुदाय को हीनभावना से न देखे — ये बातें कर्तव्य की माँगें हैं। यदि एक तरफ जीने का अधिकार है तो दूसरी तरफ जिलाने का कर्तव्य भी है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 15 के अनुसार, 'राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा'। कानून, शासन और प्रशासन की तरफ से समान व्यवहार हर किसी का हक है। सबको सीखने, बढ़ने और सार्थक रूप से जीने के लिए समान अवसर प्राप्त हो, इसके लिए सबका सहयोग ज़रूरी है। मानव अधिकार और मानव कर्तव्य आपस में पूरक हैं और उनके सन्तुलित तालमेल की नींव पर ही इन्सानियत की इमारत खड़ी हो सकती है। सद्भाव और सहयोग से भरा-पूरा व्यवहार अधिकार और कर्तव्य के बीच का पुल है, जिससे होकर आपसी सफर तय होता है।

विविध धर्मों में मानव अधिकार की अवधारणा बहुत ही प्रासंगिक चर्चा है। सभी इन्सानों के अधिकारों की रक्षा करना धर्मों का अहम् फ़र्ज है। जोड़ने का नाम है धर्म। जुड़ने के लिए, चाहे ईश्वर से हो या इन्सान से, अधिकारों और कर्तव्यों का पहा। इन्तज़ाम

चाहिए। धारण करना भी धर्म है। कर्तव्यों के साथ-साथ अधिकारों को भी धारण किया जाना चाहिए। धारण करने के लिए अपने-अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति सजग होना ज़रूरी है। गहरे अथ में, अपना स्वभाव और अन्त:करण भी धर्म हैं। अधिकार-चेतना और कर्तव्य-भावना दोनों धार्मिक बोध की बुनियाद में मौजूद है। विविध धर्म-परम्पराओं से बने सार्वभौम मूल्यों से इन्सान को अधिकार और कर्तव्य के समायोजन में सहूलियत मिले, धर्म-परम्पराओं की यही सार्थकता है।

ईसाई धर्म में मानव अधिकार की अवधारणा की नींव बाइबिल में पायी जाती है। बाइबिल में इसकी चर्चा स्वतन्त्र रूप से न होकर समग्र रूप से किया गया है। इस विषय पर ईसाई दृष्टिकोण 'ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाया', इस धारणा पर आधारित है (पवित्र बाइबिल, पुराना विधान, उत्पत्ति 1.27 पृ. 5)। इन्सान ईश्वर के सदृश बनाया गया है। ईश्वर का स्वभाव उस पर छाया रहता है। ईश्वर इन्सान में वास करता है। ज़िन्दगी के महासागर में व्यक्ति—रूपी नाव में ईश्वर भी इन्सान के साथ सदा सफर करता है। (वही, नया विधान, मारकुस 4.35, पृ. 61)। बाइबिल की कुछ पुस्तकों के लेखक पौलुस पूछते हैं—'क्या आप यह नहीं' जानते कि आप ईश्वर के मन्दिर हैं और ईश्वर की आत्मा आप में निवास करता है' (वही, पृ. कुरिंथी 3.16, पृ. 255, कुरिंथी 6.16, पृ. 279)? इश्वर का प्रतिरूप होकर इन्सान उस प्रतिष्ठा के लायक है, जो ईश्वर को प्रतीकात्मक तौर पर दिया जाता है। ईसा का कहना है—'तुम मेरे इन भाइयों या बहनों के लिए, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, जो कुछ करते हो, वह तुम मेरे लिए ही करते हो' (वही, मत्ती 25.40, पृ. 45-46)। मतलब है—इन्सान की सेवा ईश्वर की पूजा के बराबर है। इस विचार से, ईश्वर का प्रतिरूप और प्रतिनिधि होकर हर इन्सान इज़्जत और सम्मान का हकदार है। इन्सान इन्सान से सद्भाव और प्यार-मुहब्बत से जुड़ जाय, यही जीने का इन्सानी तरीका है। एक दूसरे का अंगीकार करे और एक दूसरे की सेवा करे — यह किसी की मेहरबानी नहीं है, बल्कि कर्तव्य और अधिकार दोनों का मिला-जुला रूप है। खुदा को किसी की इबादत की जरूरत नहीं है। हर इन्सान को जीने के लिए दूसरे का साथ मिले और अपनो ज़िन्दगी को कामयाब बनाने के लिए दूसरे का सहारा मिले, यही जीने की कला है। इन्सान के साथ ऐसे सद्व्यवहार में खुदा की असली इबादत सम्पन्न होती है। ऐसा व्यवहार, एक तरफ इन्सान का फर्ज है और दूसरी तरफ, उसका का हक भी है। ऐसी धारणा मानव अधिकार के ईसाई दृष्टिकोण की बुनियाद है ।

इन्सान-इन्सान में समभाव की भित्ती पर मानव अधिकार की ईसाई धारणा खड़ी होती है। समभाव ईसाई जीवन-दृष्टि की केंद्रीय बिन्दु भी है। ईसा ने ईश्वर को पिता के रूप में महसूस किया और सभी मनुष्यों को उस पिता की सन्तान मानी। जैसे किसी भी बाप के लिए अपनी औलाद बराबर महत्व की है, ठीक वैसे ही सभी मनुष्य ईश्वर के सामने समान महत्व के हैं। इन्सान-इन्सान में समभाव वास्तव में ईश्वरीय गुण है। ईसा ने अपने स्वर्गिक पिता के गुण को इन शब्दों में चित्रित किया — 'अपने स्वर्गिक पिता भले और बुरे, दोनों पर अपना सूर्य उगाता तथा धर्मी और अधर्मी, दोनों पर पानी बरसाता है' (वही, मत्ती 5.45, पृ. 8)। इतना ही नहीं, ऐसे आदर्श पिता के लायक बेटे के समान ईसा ने पूर्ण समभाव की वकालत करते हुए कहा — 'तुम पूर्ण बनो, जैस तुम्हारा स्वर्गिक पिता पूर्ण है' (वही, मत्ती 5.45, पृ. 8)। समभावपूर्ण व्यवहार ही पूर्णता की सही परिभाषा है। इसी में धर्म और आध्यात्मिकता की चरम सीमा भी पायी जाती है। स्पष्ट है, समभाव में कर्तव्य-पालन और अधिकार-प्राप्ति का सुरक्षित इन्तज़ाम है।

समभाव की आत्मा प्रेमभाव है। प्रेमभाव की शुरुआत सद्भाव से होती है। जहाँ प्रेमभाव है, वहाँ समभाव है। प्रेम ही ज़िन्दगी का मर्म है। यही जीवन का पहला नियम भी। यदि इस नियम का बराबर पालन होता है, तो ज़िन्दगी में दूसरे नियमों की ज़रूरत नहीं होती। पौलुस इस नियम को 'हृदय पर अंकित नियम' और 'अन्त:करण का साक्ष्य' कहते हैं (वही, रोमी 2.15, पृ. 233)। ईसा ने प्रेम को समर्पण का करार देकर कहा — 'इस से बड़ा प्रेम किसी का नहीं कि कोई अपने मित्रों के लिए अपने प्राण अर्पित कर दे' (वही, योहन 15.13, पृ. 172)। ईसाई जीवन की खास पहचान के रूप में उन्होंने अपनी मिसाल को ही बुनियादी तालीम के रूप में पेश करते हुए कहा — 'जिस प्रकार मैंने तुम लोगों को प्यार किया, उसी प्रकार तुम भी एक दूसरे को प्यार करो' (वही, योहन 13.34, पृ. 169)। 'ईश्वर सब का पिता ह' ऐसी आस्था से 'सभी मनुष्य अपने भाई और बहन हैं' ऐसा अहसास उभर आता है। ऐसे प्यार-भाव में, खून के बाहर भी भाई-बहन-सा और दोस्ताना भाव पैदा होता है। अपनेपन के ऐसे माहौल में एक दूसरे से जुड़ना आसान होता है। ऐसे प्यार और रिश्ते के भाव में कर्तव्य-भावना एक स्वाभाविक और सुखद बन्धन बन जाती है।

जब हर कोई अपने-अपने प्यार के फर्ज का पालन बखूबी निभाता है, तब दूसरे को अपना हक भी यों ही हासिल होता है। ऐसे हालात में हर इन्सान को अधिकार एक नैसर्गिक प्रक्रिया के भीतर ही अपने-आप हासिल होता है।

सामाजिक व्यवहार का एक स्वर्णिम नियम है, जो ईसा द्वारा लागू किया गया है — 'दूसरों से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहते हो, तुम भी उनके प्रति वैसा ही किया करो' (वही, मत्ती 7.12, पृ. 10)। आपसी लेन-देन की यही बुनियादी नीति है। दूसरों के प्रति ज़िम्मदारियाँ निभाने के बाद ही उनसे उम्मीदें रखना जायज है। ऐसा व्यवहार ही न्याय के मुताबिक है। यही नीतिशास्त्र की सार्वभौम आधार भी है। इस स्वर्णिम नियम में हक और फर्ज के दरमियान तालमेल और सन्तुलन भरपूर कायम है। साथ ही, फर्ज को निभाने की प्राथमिकता पर ज़ोर लगाने से हक को हासिल करना सब के लिए निश्चित होता है। अधिकार और कर्तव्य एक सिक्के के दो पहलू के समान हैं। कर्तव्य का मूल्य चुकाने पर अधिकार की पहचान हासिल होती है। अलग-अलग व्यक्तियों और समुदायों की सांम्मलित जीवन की सफलता के लिए यह नियम बाकायदा स्वर्णिम है।

अधिकार और कर्तव्य के तालमेल की सर्वोत्तम मिसाल 'शरीर' है, पौलुस ने ऐसा तर्क प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि शरीर के बहुत-से अंग होते हैं, लेकिन शरीर एक है। (पृ. कुरिंथी पत्र 12.12-13, पृ. 265-6)। अंग शरीर नहीं है, बल्कि सिर्फ अंग है। अनेक अंग एक ही अंग की बहुतायत नहीं है, वरन् अलग-अलग अंग हैं। अंगों के भिन्न-भिन्न रूप हैं, आकार हैं, स्वभाव हैं, जगह हैं और भूमिकाएँ हैं। उनमें मौजूद फर्क ही उसकी अपनी-अपनी खासियत है। सभी अंग मिलकर शरीर बनते हैं। शरीर का कोई एक अंग दूसरे से कह नहीं सकता कि मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं। शरीर के किसी एक अंग की जीत या खुशी सभी अंगों की जीत या खुशी है। ठीक उसी प्रकार शरीर का किसी एक अंग में होने वाला दर्द सभी अंगों में महसूस होता है। शरीर का कोई भी अंग बड़ा या छोटा नहीं है। सभी अंग बराबर आदर के पात्र हैं। शरीर का कोई भी अंग कमज़ोर नहीं है। यदि कोई अंग अपने आपको दूसरे से ज़्यादा ताकतवर समझता है, तो उसका फर्ज है, जो कमज़ोर समझा जाता है उसके लिए सहारा बनना। अंगों को एक दूसरे की सेवा करनी चाहिए। अंगों की विविधता से शरीर की गतिविधियाँ सुचारू रुप से चलती है। शरीर की एकता से अंगों की प्रासंगिकता भी बनी रहती है। शरीर के हर अंग का अपना-अपना कर्तव्य और अपना-अपना अधिकार है। जैसे शरीर के विविध अंग एक सिक्के के दो पहलू के समान आपस में पूरक हैं, ठीक वैसे ही अधिकार और कर्तव्य भी एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। किसी एक के अधिकार की चर्चा दूसरे के कर्तव्य के संदर्भ में ही सार्थक है।

दूसरे की ज़िम्मेदारी लेना दूसरे के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए ज़रूरी है। इस सिलसिले में बाइबिल का एक किस्सा है। आदम और सारा के दो पुत्र थे - काईन और हाबिल। काईन खेती करता था और हाबिल भेड़-बकरियों को चराता था। खुदा हाबिल से ज़्यादा प्रसन्न थे। इस पर काईन नाराज़ थे। एक दिन काईन ने हाबिल पर वार किया और उसे मार डाला। खुदा ने काईन से पूछा — 'तुम्हारा भाई हाबिल कहाँ है' ? काईन ने सवाल का जवाब देने के बजाय खुदा से उल्टा सवाल किया - 'क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ' (वही, पुराना विधान, उत्पत्ति 4.1-10, पृ. 7-8) ? यह सवाल मानवीय ज़िंदगी में बुनियादी तौर पर महत्व रखता है। नये विधान में एक दूसरा किस्सा इस सवाल का जवाब पेश करता है। ईसा अपने शिष्य और माता मरियम के साथ काना नगर के एक विवाह-समारोह में शरीक थे। समारोह में अंगूरी परोसने की पथा थी। यकायक अंगूरी खत्म हो गयी और मेजबान परेशान हो गये। माता मरियम ने मेजबान से चर्चा किए बगैर ही अपना बेटा ईसा से कुछ करने का आग्रह किया। ईसा ने अपनी अलौकिक ताकत से पानी को अंगूरी में बदल दिया। माता मरियम ने इस प्रकार उस मेजबान की लाज रखी। बगैर पूछे ही, सोच-समझकर और दूसरे को अपना भाई समझकर उसकी ज़रूरत की पूर्ति करते हुए माता मरियम ने यह साबित किया कि वह अपने भाई की रखवाली है (वही, योहन, 2.1-11, पृ. 146)। ये दोनों किस्से प्रतीक के तौर पर सवाल और जवाब के रूप में आपस में मुखातिब हैं। पुराने विधान के सवाल का जवाब नये विधान ने करके दिखाया कि दूसरे की ज़िम्मदारी लेना और उसकी मौके पर मदद करना अपना फ़र्ज है। दूसरे के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए हद से कहीं आगे बढ़कर भी अपने कतव्यों का पालन करना असल में इन्सानियत और धर्मपरायणता की सांम्मलित पहचान है, यही ईसाई मान्यता है।

सामाजिक जीवन के कुछ खास आयाम मानव अधिकार की ईसाई अवधारणा में विशेष ध्यान देने योग्य है। समाज के भिन्न वर्गों के बीच जहाँ अधिकार और अधिकार का अनुपात बिगड़ गया है, वहां ईसाई नज़रिया खास है। धर्म के क्षेत्र में अधिकारों का उल्लंघन सबसे अधिक था। यह तय करना कि 'कौन भला, कौन बुरा' बहुत मुश्किल है। यदि यह बात कुछ निश्चित भी होता है तो खुदा उनमें फर्क नहीं करता है। लेकिन इन्सान व्यक्ति और व्यक्ति के बीच तथा समुदाय और समुदाय के बीच फर्क करके अपने आपको ज़्यादा महत्वपूर्ण साबित करने की होड़ में रहता है। यहूदी समाज के धर्म-नेता अपने आपको पुण्यात्मा समझते थे और दूसरों को पापी। यह सोच खुदा के अलौकिक ज्ञान के साथ गुस्ताखी तो थी ही। यह दूसरों के भीतरी हकीकत का अतिक्रमण भी रही। इसलिए ईसा ने उन पाखण्डियों की पोल खोली और उन पर जमकर बरसे। और तो और, उन्होंने उन तथाकथित पापियों को दिल का साफ होने और खुदा के नज़दीक होने का करार दिया। नाकेदार—जैसे समाज के निम्न वर्ग के लोगों तथा पापियों के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना और दोस्ती करना आदि व्यवहार से ईसा ने उन कमज़ोरों के अधिकारों की रक्षा की (वही, लूकस 19.1-10, पृ. 129)। सौ भेड़ों में निन्यान्बे को छोड़कर एक खोये हुए की तलाश में निकलने वाले भले गड़रिये का जीवन्त रूप बनकर ईसा ने जीने के हक से वंचित कमज़ोरों की तरफ खड़े हुए (वही, लूकस 15.1-7, पृ. 121-22)। साथ ही, ईसा ने गरीब, दीन-हीन, नम्र, दुखी, गुनाहगार आदि के अलौकिक बड़पन को उजागर करके उन्हें इज्ज़त दिलायी (वही, मश्रो 5.1-10, पृ. 5-6)। उन्होंने कमज़ोरों ताकतहीनों, आवाज़हीनों और हाशिये पर सरकाये हुओं को मजबूत करने और उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने की अनूठी बीड़ा उठायी।

महिलाओं, बच्चों और अन्य शोषितों के साथ भेदपूर्ण व्यवहार के खिलाफ ईसा डटकर खड़े हुए और उन्हें न्याय दिलाया। व्यभिचारिणी स्त्री को पत्थर से मार डालने जा रहे ढ़ोंगी पुरुषों को व्यभिचार के साथी होने की असलियत को उजाले में लाकर (वही, योहन 8.1-11, पृ. 157-58) उन्होंने पुरुषों के अन्यायपूर्ण हरकतों से निजात दिलायी। पश्चाताप करने वाली पापिनी स्त्री को खुदा की स्वीकृति के योग्य बताकर (वही, लूकस 7.36-50, पृ. 103) ईसा ने पुरुषों की हुकूमत की मज़बूरी भोग रही स्त्रियों को पुरुषों के बारबर का दर्जा दिलाया। बच्चों को छोटा समझकर अपने आपको बड़ा मानने वाले वयस्कों को बच्चों में असली बड़प्पन का अहसास करा कर ईसा ने बच्चों को अपने अधिकार से युक्त किया (वही, मत्ती 18.1-17, पृ. 30)। ज्ञानी, शक्तिशाली, कुलीन और गणमान्य लोगों के घमण्ड और विशिष्ठ अधिकार — भावना को चुनौती देते हुए दुनिया की दृष्टि में मूर्ख, दुर्बल, तुच्छ और नगण्य लोगों को खुदा के विशेष प्यारे घोषित कर पौलुस ने अधिकारों में सन्तुलन स्थापित करने की ईसा की पहल को फैलाव भी दिया (वही, प् कुरिंथी, 1.26-31, पृ. 253) ।

गरीब, गुनाहगार, विकलांग, रोगी, सेवा करने वाले, आदि के अधिकारों को भी ईसा ने बुलन्द किया। लाज़रज़ जैसे गरीब की बुनियादी हक की ओर बेरहम रहे अमीर को दण्ड के लायक बतलाकर ईसा धन-सम्पत्ति के असन्तुलित व्यवस्था में मौजूद हकतलफी की निन्दा की (वही, लूकस 16.19-31, पृ.124)। मन्दिर के खज़ाने में बहुत अधिक सिक्के डालने वाले अमीरों की तुलना में महज एक पैसा डालने वाली बहुत ही गरीब विधवा को सबसे अधिक डालने वाली बताकर ईसा ने खुदा के सामने बड़प्पन की असली कसौटी को उजागर किया ही नहीं, बड़े-छोटे की गलतफहमी पर जमकर तमाचा भी मारा (वही, मारकुस 12.41-44, पृ. 77)। 'गुनाहगार भी क्षमा की अधिकारी है' — इस बात को साबित करने के लिए ईसा ने अपने शिष्यों को सत्तर गुना सात बार माफ करने की नसीहत दी (वही, मत्ती 18.22, पृ. 31)। साथ ही, सलीब पर चढ़ाकर अपने साथ हीनतम व्यवहार करने वालों व लिए 'पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं', ऐसी प्रार्थना कर ईसा क्षमा की सबसे अनोखी मिसाल खुद बने। इस प्रकार, गुनाहगारों को पश्चात्ताप करके एक नयी ज़िन्दगी जीने के अधिकार से युक्त किया (वही, लूकस 23.34, पृ. 139)। भोज देते समय अपने मित्रों, कुटुम्बियों और अन्य धनी पड़ोसियों की जगह कंगालों, लूलों, लंगड़ों और अंधों को बुलाने की तालीम देकर ईसा ने समाज के आधे-अधूरों को भी इज्ज़त के लायक घोषित किया (वही, लूकस 14.12-14 पृ. 120)। विभिन्न कारणों से बीमार हुए लोगों को चंगा कर और उन्हें नये जीवन प्रदान कर ईसा ने उनके भी जीने के अधिकार पर रोशनी फेरी (वही, मारकुस 5.1-43, पृ. 61-63) पेशे से या स्वेच्छा से दूसरों की सेवा करने वालों को निचले स्तर के समझाने की गलतफहमी को दूर व रने के लिए ईसा ने कहा — 'जो तुम में बड़ा है वह सबसे छोटे-जैसा बने और जो अधिकारी है, वह सेवक-जैसा बने। ... मैं तुम लोगों में सेवक-जैसा हूँ' (वही, लूकस 22.24-27, पृ. 135)। इस प्रकार, किसी-

न-किसी प्रकार से शोषण के शिकार हुए और अपने अधिकारों से वंचित हुए लोगों के प्रति तरजीही प्यार दिखाकर उन्हें दूसरों से भी महत्वपूर्ण सिद्ध करते हुए ईसा ने निचौड़ के रूप में कहा —'कारीगरों ने जिस पत्थर को बेकार समझकर निकाल दिया था, वही कोने का पत्थर बन गया हैं' (वही मारकुस 12.10, पृ. 76)। मानवमात्र के अधिकार की पुनर्स्थापना के लिए ईसा द्वारा चलाया गया यह अभियान बहुआयामी ही नहीं, समग्र भी है।

मानव अधिकार की ईसाई अवधारणा ईसा की जीवन-दृष्टि, जीवन और शिक्षा का निचोड़ है। खास तौर पर इन्सान ईश्वर का सदृश बना है। ईश्वर उसमें सदा वास भी करता है। इसलिए हर इन्सान प्रतिष्ठा और सम्मान के लायक है। हर इन्सान अपने अन्त:करण, विचार, अभिव्यक्ति और आचरण के स्तर पर आज़ाद है। सुचारू रूप से अपनी ज़िन्दगी जीने का अधिकार हर किसी का है। सार्वभौम नीतिशास्त्र के साथ-साथ भारतीय संविधान के मुताबिक भी, इन्सान के बुनियादी अधिकार का हनन हरगिज न्याय-संगत नहीं है। लेकिन, जन्म, वंश, भाषा, शिक्षा, पेशा, धर्म, वर्ग, विचारधारा, रीति-रिवाज़, संस्कृति, देश, आदि के आधार पर एक इन्सान दूसरे इन्सान से श्रेष्ठ होने का ढ़ोंग रचता है और दूसरे को हीनता की ओर धकेलने की कोशिश करता रहता है। ईसा अपने समाज की कुरीतियों पर जमवर प्रहार किया। बात-बात पर विशिष्ट अधिकार का दावा करने वाले तथाकथित ताकतवरों, समझदारों और बड़ों को किनारे की ओर धकेल दिया और समाज के हाशिये पर जीने को मज़बूर तथाकथित, छोटों, बेवकूफों और कमज़ोरों को मुख्यधारा में होने वा अधिकार दिया। गरीब, गुनाहागार, बच्चे, महिलाएँ, विकलांग, बीमार, सेवक और अन्य अभागों को भी खुदा की सन्तान के रूप में हकदार साबित कर ईसा ने उन्हें इन्सान के लायक इज्जत दिलायी। अन्त:करण पर अंकित प्रेम-भाव-रूपी इन्सानी नियम को ज़िन्दगी के केंद्र में स्थापित कर ईसा ने मानव समाज के सभी समुदायों और शाखाओं में अधिकारों का बँटवारा किया। उन्होंने अधिकार और कर्तव्य को सिर्फ नज़रिये का फर्क सिद्ध कर उन्हें एक दूसरे का पूरक भी बताया।

मानव अधिकार की रक्षा के लिए ईसा का अनूठा नारा था — कोई किसी का शोषण नहीं करे और कोई किसी के अधिकार का अतिक्रमण नहीं करे। हर कोई प्रेम-भाव से, मित्र-भाव से और भातृ-भाव से दूसरे की सेवा करे। 'जीओ और जीने दो' से बढ़कर 'जीने की मदद करो' के विशिष्ट भाव से प्रेरित होकर समाज के कमज़ोरों और आवाज़हीनों की तरजीही वकालत चलती रहे और मानव अधिकार का मार्ग प्रशस्त होता रहे। ऐसे संकल्प को लेकर समूची धर्म-परम्पराएँ मैत्री-भाव से एक जुट होकर प्रतिबद्ध हो जायें। इस प्रकार, मानव समाज ऐसा 'वसुधैवकुटुम्बकम' बन जाये कि हमारा समाज ज़्यादा जीने लायक रहे और हर इन्सान को जीने का भरपूर सुख मिले। इन्सानियत में ऐसा अलौकिक निखार आये, यही वक्त का तकाजा है, मंगलकामनाएँ भी।

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS